इति

गीतांजलि श्री

हिन्दी ADDA

इति

मौत को लेकर हम आतंकित थे कि जब वह आदमी मरेगा तो यह सारी झंझट होगी कि क्या कहाँ कैसे कब। टुकड़े अस्त व्यस्त बिखरे। मौत के सारे अनजानपन को देखते हुए। उनके सारे टूटे फूटेपन को देखते हुए। उनके, हमारे बाप के। और यह भी

उलझा मसला कि कौन कहेगा, किससे, कैसे, उन सारी 'दुश्मनियों' के रहते मेरी भाई से, पति की बहन से, भाभी की जीजा से, माँ की सब बहुओं दामादों से, जिसके चलते हमारा आपस में आना जाना बंद था। बरसों से। एक दूसरे की झुर्रियाती शक्लों को लगभग न पहचानने की नौबत तक जब भूले और भटके कहीं सामना हो जाता, दुकान पे, रेस्त्राँ में, कभी ट्रैफिक की लाल बत्ती पर खड़े।

बरसों से हमने एक दूसरे को नहीं देखा था। महान भारतीय परिवार। घनिष्ठ अंतरंग संयुक्त। देखा था सबको बुढ़ाते किसी ने तो अकेले पिताजी ने ही जिन्हें इसे या उसे या किसी को भी देखने से आपत्ति नहीं थी और जो इसकी या उसकी या किसी की भी देखभाल में रहने हमारी मोटर गाड़ियों में ड्राइवर के साथ टटके चले जाते।

हाँ ऐसा हो सकता तो वह खुद हमें अपनी मौत की खबर दे सकते थे पर ऐसा तो होता नहीं। हमारे ड्राइवर जन भी दे सकते थे। जरूरत पड़ने पर।

हुआ ये कि ऐसी जरूरत ही नहीं पड़ी। सब अपने आप होता चला गया। जैसे एक सलीके का झटका दिया हो और कालीन सफाई से बिछता चला जाए। जैसे बखूब रिहर्सल के बाद सधा सधाया नाटक खेला जाए। जैसे बिखरे टुकड़े जुड़ते चले जाएँ और पूरा सिलसिलेवार चित्र उभर आए। पिता बहन के यहाँ थे जिससे मेरी कुट्टी नहीं थी जिसके संग माँ रहने का राजी थीं क्योंकि दामाद जी दौरे पर गए हुए थे। और माँ की पूँछ की तरह पिता जी, पीछे पीछे, उन घरों में जहाँ बहू दामाद लापता हों।

सारे दिन वे अपने जैसे ही रहे। फूहड़। बेढब घिसट घिसट इस कमरे से उस, अपनी रबड़ चप्पलों में पाँव आधा धँसाए, आधा लटकाए, और पजामे को बार बार हाथों से ऊपर सँभालते, बार बार उसके अधखुले नारे की पूरा खुल जाने की जिद को पछाड़ते। खट खट उन्होंने बहन के कमरे के बाहर मचा दी जब अभी अँधेरा ही था और मचाए रखी जब तक उसने सोने का नाटक बंद न कर दिया और झल्ला के दरवाजा न खोल दिया।

घर भर की बत्तियाँ जगमग जगमग।

है क्या, उसने फटकारा। सवेरा वे बोले और चाय चाहिए। रात है देख नहीं रहे अँधेरा उसने और डाँट लगाई। उजाला है उन्होंने इशारे से दीवाल - याद दिखाया और तीन बज गया जो सवेरा है। जाइए सो जाइए उसने झाड़ा और किसी को मत जगाइए और कोई बत्ती नहीं जलाइए सात के पहले। भले घर का कोई उसके पहले नहीं उठता उसने आखिरी मारा। वह जुमला जो हम उन पर अक्सर मारते उनकी वृद्ध कुलाँचों पर। वह जुमला जो उन्हीं की ईजाद थी, उनके और हमारे युवा दिनों की हमको उनकी हिदायत कि भले घर का कोई ऐसा नहीं करता जैसे लड़कियाँ लड़कों से दोस्ती करें और वापस!

पर कौन वे बात मानने के लिए पैदा हुए थे? न हम! वे हमेशा ऐसे रहे कि दुनिया पैदा हुई है उनकी सेवा करने के लिए। तो जुटे रहे जगे रहे फिरते रहे, बहन के दोबारा दरवाजा टाइट बंद करने के बाद भी और माँ की भन भन के बाद भी कि यही हैं इनकी स्वार्थी झक्खी आदतें जो वजह हैं उसकी बच्चों के संग रिश्ते कलह में खटास की, कि निरंतर शर्मिंदा होना पड़ता है उसे, कि जहाँ नहीं जलानी हो बत्ती जला देंगे जहाँ नही बुझाना हो पंखे बंद कर देंगे और सबको जगा देंगे जो कामकाजी लोग हैं और सो रहे हैं और उनकी तरह बेकार और बेकाम नहीं और बस उनकी ये सब न हो तो, वह भनभनाती।

ठेपी पड़े कानों पर। या एक से जाकर दूसरे से निकल जाने के लिए। जिस अंतर्यात्रा के दौरान वे सिर यों ओ हो हो हो हिलाते जैसे तंग आ गए हों पर आँखें उनकी फर फर चमकतीं, प्रफुल्ल अपने इस होने पर, जीने पर, अपने होने जीने के अहसास को खुद भी, दूसरों को भी, कराने पर।

घूमे वे छोटी मोटी सैर पर अँधेरे में जो भोर भी जिंदा और फड़कते, और जरूर ही मूतते भी गाड़ियों की बोनेट पर, उस इमारत में रहने वालों की जो आए दिन चौकीदार से शिकायत भेजते अपनी मोटरों की इस बिन बुलाई धुलाई पर, माँ तक, जो छोटा सा कुछ क्षमा याचना में कहती लंबा सा कुछ झुंझलाने में उस सारे दिन फिर।

तो जब आखिरकार माँ और बहन के लिए भी सवेरा हो गया, कुछ नया नहीं था उस दिन में वरना सब कुछ वही पुराना उन्हीं की तरह। उन्होंने नौकरों को जगा लिया था,

चाय पी ली थी, नाश्ता बनवा लिया था और वैसे ही लदड़ फदड़ बैठे थे पजामे पर अब भी गिलाई भरे, नाखूनों में अब भी कालिख भरे, जो अब भी बढ़ रहे थे।

मेरे नाखून काट सकती हो प्लीज, उन्होंने बहन से पूछा, जिसे अनायास इस टूटे बिखरे आदमी पर तरस आ गया जो उसके बाप थे और जिन्होंने अपने सारे बढ़िया दिन बदमिजाजी और तानाशाही में बिताए थे और अपने नाखून अपने मातहतों से कटवाने में और पत्नी पर हुक्म चलाने में। हालाँकि वह उस दयनीय मुद्रा और प्लीज का स्वर ओढ़ने की मक्कारी खूब पहचानती थी।

और अब मेरा गुसल उन्होंने हुक्म चलाया जो उनका जन्मसिद्ध अधिकार था जिसे पालना सबका एकमात्र कर्तव्य। जिसका मतलब था उनके लिए गरम पानी बाल्टी में भरा और उसके पहले कप में जरा सा हजामत के लिए रख देना ताकि वे पुराने तरीके से ब्रश फच्च फच्च चला के दाढ़ी बनाएँ और उनके लिए साफ कमीज पतलून और बनियान जाँघिया बिस्तर पर तैयार रख देना। जो काम शुरू से माँ करती आई थी और अब भी पर अब निरी शिकायतों और चेतावनियों के साथ कि वे याद रखें अभी वक्त नहीं हुआ है और बस उन्हें है कि आगे पीछे सब उनकी परछाईं की तरह नाचते रहें और नहाते ही वे माँगेंगे खाना और बस हर वक्त चाहिए उन्हें खाना खाना खाना और फिर बहेगा उनका पेट और सफाई उसे ही करनी है जैसे उसी के लिए वह है और वैसे उन्हें क्या पड़ी और कब पड़ी कि किसलिए वह है किसलिए नहीं।

घड़ी देख लें और बारह के पहले पानी न माँगें और डेढ़ के पहले खाना नहीं उसने पिलाई।

है कहाँ मेरी घड़ी, वे शुरू हो गए अपने अगले शगल पर, रोज के, खुश कि लो फिर मिला जीवन में मकसद और दिया भी सबको - घड़ी - तलाश।

ले दे के वे खुश खुश इनसान थे। ये हमने कहा जब वे चले गए। पर पहले हम यही कहते कि बैठे रहते हैं बेकार, बेढंगे, बेढब, खुचड़ू, खूसट, अस्त व्यस्त अड़चन बने, किसी के लिए कुछ न करते और हर किसी से अपने लिए कुछ न कुछ कराते और बस केवल चिड़चिड़े चिड़चिड़े।

जो वे नहीं थे। हम थे। वे - बाद में हमने कहा - अच्छे भले फिट थे अपने क्यों - इतना - सोते हो - तुम - सब - उठो मुझे - चाहिए - और - कहाँ -है - मेरी - घड़ी -और - कहाँ - है - मेरा - बटुआ में।

यह भी एक मजाक। या उत्पात। असल तो उनका जीवन हमारे लिए या तो यह था या वह या दोनों गुँथे पड़े। मजाक और उत्पात। उनका बटुआ। जो वे कभी नहीं खोते थे। और कुर्ता उतार के कमीज पहन के और पतलून उतार के पजामा चढ़ा के दो पल बस गँवाते उसे इधर से उधर फिर इधर खिसकाने में, पर जिसे खो देने, गिरा देने, लुटवा लेने के दुःस्वप्न वे बारंबार देखते। हमें। वह उनकी जेब में सँभला रहता भय उनके नाम पते के कि क्या मालूम कब और मय सौ रुपिल्ले के जो शुरू होता था बतौर कागज के नोट के और फिर छोटा होता जाता सिक्कों में बदलते हुए, उतनी ही तेजी से जितनी से वे जलेबियाँ पकौड़ियाँ खाते रहते उन बाजारों खोमचों से खरीद कर जो हमारे घरों के आसपास होते ही होते और उनके लिए निषिद्ध होते इसलिए वे खनखनाते सिक्कों की बढ़ती तादाद को दबाए रखते कि हमें पता न चल जाए। जो कस के न दबाए रख पाते वह होता उनका पेट जिसके खुलते ही सारी निषिद्धता बेकाबू खुले में फिसल आती। माँ सफाई करती और झिझकार पिलाती और उन्हें हमेशा सच बोलने को कहती। वे बोलते भी। सच नन्हें बालक की तरह। कि तबियत ठीक नहीं लग रही और हाँ कुछ कचौड़ियाँ याद आ रहा है खाई तो थीं और क्या मैं मर रहा हूँ? हम सच्चे मन से उन्हें सांत्वना देते नहीं पर ऐसा फिर मत करिएगा वर्ना मर भी सकते हैं।

हम सबने कोशिश की थी कि उन्हें सौ रुपये न दें। देखो एक फूटी कौड़ी नहीं इसमें वे शुरू करते बटुआ कितना खाली है दिखा कर। फिर बंद ही न करते कि कैसी घबराहट होती है, असुरक्षा का भाव आ घेरता है कि कुछ भी हो सकता है अकेले सड़क पर, रिक्शा भी नहीं ले पाऊँगा रास्ता भटक गया तो, न ट्रेन ले पाऊँगा बनारस के लिए जहाँ जाना है, न प्रसाद खरीद पाऊँगा हनुमान जी के लिए जिनके दर्शन के लिए वह हर मंगलवार को मंदिर जाते हैं और क्या यह बड़ी फख्र की बात है कि किसी का सारा पैसा उसके बुढ़ापे में छीन लो? चौकीदार को सुनाते पड़ोसियों को सुनाते, लिफ्ट में साथ चलते अजनबियों को भी सुनाते। कि मुझे पैसा ही नहीं देते सब न खाने को कुछ।

हममें से कोई गुस्साता, कोई झेंपता और एक न एक हममें से - अक्सर माँ - ठन जाती कि होना ही चाहिए सौ रुपये का नोट उनके बटवे में। यह देखिए, रख रहे हैं सौ रुपये इसमें यह देखिए रख दिया हम बताते पर खर्चिएगा नहीं उन सड़ी गली मिठाइयों और नमकीन पर खराब तेल में तले जो आपको बीमार करते हैं हमसे कहिएगा हम सादा साफ अच्छा घर पर बनवा देंगे।

सवाल ही नहीं उठता, वे संपन्न बटुआ जेब में रखते, वैसा कुछ ऊटपटाँग खाऊँ, न जाने घर की या बाजार की मिठाई के लक्ष्य में, भोली आवाज में।

अजीब था कि हम सब उनसे अलग अलग उलझते और अपने निजी अनुभव से जानते कि दूसरे भाई बहनों को क्या भुगतना पड़ रहा है। मानो उनके प्रति हमारा त्रस्त भाव वह अदृश्य डोर थी जो हमें एक में बांधे हुए थी और एक दूसरे से अलग सही हम सभी उसी पर डगमग लड़खड़ चल रहे हैं।

जिसकी एक गाँठ थी पेन्शन। सिर्फ भाई, जो पिता जी की तरह सरकारी अफसर थे, उनसे चेक पर दस्तखत करवा लेते थे। हम बाकी लाख दलीलें दें, खौफ छेड़ें, कि वे सकपका के साइन कर दें - बेबी की फीस जानी है, माँ को बनारस के लिए चाहिए जहाँ वह आपके साथ आएँगी, आप ही कह रहे हैं आपके पास एक दमड़ी नहीं है। तो फिर। पर वे माहिर थे और मानते थे कि बहुत है इधर और पेन्शन पर जमी धूल भी न छेड़ी जाय। और भाई हैं कि खास कुछ बोलते नहीं, बस दो साफ कड़े शब्द, जैसे कभी खुद उनका अंदाज था, यहाँ साइन, और कलम उनके हाथ में पकड़ा देते और पिता जी तन्मय हो जाते यह जुगत लगाने में कि क्यों नहीं साइन करें पर उस तन्मयता की अनिश्चित घड़ी में उनका हाथ उनका न हो भाई का हो यों पराये हुक्म पर बाहरकत हो जाता और उनका नाम स्याही से उभर आता पर हमारा भी कोई केस था कि हम सभी बारी बारी से माता पिता की जिम्मेवारी निभा रहे हैं तो हमारा भी हक है कि नहीं फिर कैसे जायज कि भाई के पास हो पास बुक चेक बुक सब? सामना नहीं करते बस भन्न भन्न करते माँ के आगे जो किसी न किसी बहाने भाई से अपने लिए कह कर पैसा लेती रहती? और हममें से जिसे तिसे देती रहती पर बाप के आगे कभी नहीं जो और अकड़ जाते चेक को लेकर अगर उन्हें आभास होता कि सबके सब उसके फेर में हैं।

वे बस रहते रहे अपने बीते हुए आन बान शान के दिनों में और उतार के रख देते अपना दिमाग कुछ ऐसे कि जैसे दिमाग न हो हेल्मेट हो जब जब वर्तमान से जुड़ जाने का पल आ जाता। और तो और वे आज भी बीस रुपया देते उपहार में जब उनके कानों में पड़ता कि किसी का जन्मदिन किसी की शादी की जयंती है और बहन उससे चाकलेट ले आती जो उसका मूल्य था और आधा उन्हें देती जिससे वह उन्हीं की कोई जयंती जलसा त्योहार का दिन हो जाता।

इस तरह चलते रहे बूढ़े पिता हमारे, चोरी की मिठाई खाते, चोरी के सपने देखते, हर तरफ बवाल फैलाते, खुद भी बवाल दीखते पर खुद शायद अपने को बीते दिनों का रूपवान शहजादा ही देखते अभी भी और अभी भी सर इधर आओ निमंत्रण में हिलाते उन सारी महिलाओं को देख कर जो पंद्रह से पचास के दरमियान की हों और अफसोस की निरीह सी आह भी नहीं कि अब वे पच्चासी के हैं अस्सी के भी नहीं रहे। चंद दफे वे गिर चुके थे, कितनी दफे खो चुके थे पर दिल ने उनके धड़कन कभी नहीं खोई जैसे हमारे ने बार बार खोई और लगता ऐसा ही था कि हम हैं जो उनमें ठूँस ठूँस के यह प्रतीति भर देना चाहते हैं कि आखिरकार वे हैं एक बूढ़े बूढ़े आदमी यह जिद करके कि वे जब निकलें अपनी छड़ी साथ लें जैसे ही वे घर से बाहर रखने को कदम उठाते। उन्हें वह कभी पसंद नहीं था, उनकी छड़ी, और अपनी उसी अदा में कि हेल्मेट फिलहाल उतार के रख दिया है अभी, वे मरियल स्वर में कहते कि गिर पड़ूँगा उस पर टेक दी तो। गिरते नहीं पर टेक देते ही एक तरफ को वाकई ज्यादा झुक जाते और चाल और नजर टेढ़ी बीमार बीमार हो जाती। हो सकता है मुश्किल हो जाती थीं चोरियाँ जब एक ही हाथ बचता दोना लेने, पैसा देने, अपनी सारी, हाय सारी, इंद्रियों को जगा देने के लिए क्योंकि दूसरा तो वार्डन छड़ी की गिरफ्त में होता।

हाँ ठीक ही ठाक थे वे, पचासी और प्लस, और हमीं थे जो इस चिंता में कुढ़े जा रहे थे कि न जाने किस अधकचरी आड़ी तिरछी हालत में खत्म होंगे वे और खत्म करेंगे हमें। हालाँकि यह भी लगने लगा था कि वे कभी नहीं खत्म होंगे और यह तो था ही कि ऐसा वे कभी नहीं चाहते थे और ऐसा कभी उनका इरादा न बना। हम चिंतित रहते, उनके खत्म होने की बात पर नहीं, उसके ढंग की सोच सोच कर, या यों कहें बेढंग की।

बैठे रहे वे बाहर सामने के बरामदे में बहन ने कहा शांति से ऊँघते अपनी मन की करवा के अलसुबह पर फिर भी चौकन्ने हल्की सी भी हरकत पे जिस पर वे शिकारी बाज की तरह एक आँख खोलते, चिढ़ के और जल के व्यस्त आफिस जाने वालों को देखते और हार मान के पर तसल्ली पाके भी कि दुनिया और उसके जीवंत कारनामे सलामत चल रहे हैं आँख फिर वैसे ही बंद कर लेते।

तभी का कोई लमहा था जब नौकरानी बाहर आई अंदर जाइए पिता जी और पजामे का नाड़ा बाँध लीजिए। पहले तुम इधर आओ वे बोले, दाएँ बाएँ फुर्ती से नजर घुमा के और बहन को रसोई की खिड़की से झाँकते न देख। आप उठिए यहाँ से उसने कहा, जल्दी फिर नहाइए और फिर खाना खाइए, उसने उनकी मनपसंद का लालच दिया।

पहले तुम्हें तो खा लूँ वे लहराए, हम भ्रम में और भी बाँके कि वे अकेले हैं।

बस भी पिता जी, नौकरानी हँसी, हैरान भी हलकान भी।

खुश हो जाओगी बहन ने उन्हें अधखुले होठों से बुदबुदाते सुना।

हाय अइया पिता जी, नौकरानी झाड़न फटकती गई, मैं फिर कह दूँगी माता जी से।

कह देना वे बोले पर पहले आओ तो वे बोले।

ऐसे क्या पहले भी उसने किया है बहन के मन में उठा जब नौकरानी ने मुँह बिचका के झाड़न कुर्सी के हत्थे पर डाल दिया और उन्हीं की जैसी चोर निगाह दाएँ बाएँ मारी और उन्हीं के जैसे बहन को नहीं देखा जो वैसे भी बेहतर छिपी झाँक रही थी और गई आगे इठलाते हुए एकदम करीब उस आदमी के पास जो बाप थे हमारे और नखरे से कहा अच्छा तो है क्या। उन्होंने अपना सिर उठाया उसकी साड़ी का पल्लू अलग खिसकाया और उसने उनके बूढ़े मरते सिर को अपने जवान छकाछक सीने पर दबा लिया।

ब्रा भी नहीं दीदी उन मोटे खरगोशों को सँभालने बहन हँसी और दौड़ी गई थी नौकरानी का नाम पुकारती। क्या चाहिए उसने बाप से पूछा जो अकेले थे जब वह बरामदे में आई।

कुछ मीठा पिता ने झिड़क कर कहा। काफी भी कड़वी थी। तुम जानते हो सब मुझे कुछ न कुछ मीठा जरूर चाहिए।

बहन ने उन्हें टाफी दी और वे चप्पलें फड़ फड़ करते अंदर एक और की मंशा में आए थैंक यू कहते, यह मीठी है हाँ, चभड़ चभड़ चूसते।

नीचे गए। कुछ नहीं हुआ। चौकीदारों के संग बैठ के गपशप हाँकी कि अफसरी में मेरा ओहदा इतना ऊँचा था और मेरा रुतबा इतना दमदार कि तुम कल्पना नहीं कर सकते। कुछ नहीं हुआ। लिफ्ट में उन्होंने लड़कों को शोर मचाने के लिए लताड़ा और लड़कियों की नमस्ते अंकल जी का मुस्करा के जवाब दिया कहा आओ लस्सी पियो कुछ नहीं हुआ।

वह तो जब वे नहा के निकले और पलंग पर पीठ झुकाए तौलिया लपेटे बैठे थे, बदन अधपुँछा, अंडरवेयर हाथ में ढीलमढाल पड़ा, सुस्ताते हुए थोड़ा उसे पहनने के पहले, कि माँ को कहीं कुछ खटका या खटकना चाहिए था वह बोली घटना के बाद की सूझ कि एक काम से ऐसे दूसरे काम तक जाने के अंतराल में सुस्ताना तो उनका हर बार का तरीका था पर यह कोई अलग थकावट थी, भारी सी, नहाने के क्रम के बाद, और दम नहीं था कि अगले काम के क्रम में वे खुद को सरका सकें, यानी कपड़े में।

और खिड़की भी खुली छोड़ गई है, माँ ने नौकरानी के बारे में कहा, जिससे ठंड लग जाए आपको गर्म पानी से न होने के बाद और मेरा और कबाड़ा हो सके। बदलिए कपड़े झट पट और चलते बनिए यहाँ से झाड़ लगाते हुए कहा जो इन बरसों में उसका उनके संग का स्वर बन गया था।

उन्होंने धीमे धीमे हामी में सिर हिलाया बहन बोली पर बोली कि सिर उठाया तो इसलिए कि पूछें हम हैं कहाँ? एक और उनका दिन रात का सवाल जो वे कुछ इसलिए करते कि वाकई समझ नहीं पाते तेजी से बदल जाते मंजर को, जाने पहचाने एक घर से कभी भी जाने पहचाने सही, पर दूसरे घर में खुद को पाकर और अगर उस दौरान उन्होंने हेल्मेट उतार दिया होता और उस समय से परे अनंत में उतर चुके होते तो फिर भटके भटके नहीं, एकदम सरबसर गायब से, पर कुछ इसलिए भी पूछते कि

जीवंत कड़ी बने बातचीत की संपर्क की, जो दिखे, सुना यह पड़े, जुड़े, जिए पुरजोर से, इर्दगिर्द लोगों के साथ।

आप जानते हैं बनिए मत माँ ने लताड़ पिलाई।

हाँ वे गर्मी से बोले और जैसे कक्षा में लड़का जुबानी टेस्ट दे रहा हो जवाब देते हैं मोहन के यहाँ।

जो मौत के पहले का उनका पहला सलोना भाव था हमने बाद में कहा। कि बहन का न कह के उस घर को बहन के पति का कहना। जब कि उनका कायदा तब तक का यह था कि हर चीज जो वे छूते, इस्तेमाल करते, उनके वंशज, उन्हीं के खून वालों की होती, बल्कि असल में खुद उनकी, जो उनके बच्चे इस्तेमाल कर रहे हैं।

उसके बाद, माँ बाद में याद करती रही उन्होंने पूछा, जब उन्हें अंडरवेयर की याद दिलाई गई कि अरे, अचानक आवश्यक खयाल की कौंध पर जैसे, राम और उसकी पत्नी कहाँ हैं? जिससे उनका तात्पर्य था मैं। पहली बार रिश्ते की इस पलट में जहाँ उनके खून का नाम नहीं था और अब तक तक पराए दामाद से मिले अस्तित्व से परिभाषित हो रहा था। इस तरह एक और दंपत्ति को आदर देते हुए जिसे अब तक वे अनदेखा करते या दुत्कारते थे वे जापान से लौट आए उन्होंने पूछा जिससे समझ आ गया कितना वे जानते हैं जिसके प्रति नासमझ बनते हैं। उन्हें बुला लो वे बोले, उसने, यानी मैंने, ठीक ही किया है, शादी अच्छी है, मोहन पैसे शिक्षा से संपन्न है और उसे यानी मुझे विदेश की सैर कराता है और वह, यानी मैं, जरूर लाई होगी वह जापानी मिठाई जो सेहतमंद है और ज्यादा शीरीनी नहीं और तुम्हें पता है मुझे मीठा चाहिए ही चाहिए, कुछ और न हो तो गुड़ की ढेली दे दो या चीनी फाँक लूँ।

कुछ न कुछ वे बोलते गए और अपना अंडरवेयर पहनने को उठाया पर बहुत ही मंथर गति से जब बहन अंदर आई और देख पाई उन्हें सिर लटकाए पलंग पर जस के तस बैठे।

कमजोरी आ रही है वे बोले उसने कहा जब वह बोली पहन के जाइए न दूसरे कमरे में बैठिए।

क्या है उसने पूछा हमेशा हम सबमें सबसे ज्यादा दयालु उनके साथ सबसे छोटी का लाड़ पाने के नाते शायद।

मुझे भूख नहीं है वे बेतुक बोले जो एकदम सकते में लाने वाली बात थी सधे सँभले संतुलन को एक बार में ढेर कर दे ऐसी। कि उन्हें भूख नहीं पेट में बहन चिंतित हुई?

सीना वे बोले।

चेकअप करा लेना चाहिए बहन ने मुलायमियत से माँ से कहा और अफसर भाई को फोन किया जिन्होंने चुटकियों में ड्राइवरों, डाक्टरों, सेवकों की फौज एक्शन के लिए तैनात कर दी। माँ के पास आ जाइए बहन ने मुझे फोन किया और पति को साथ ले आए माँ ने पास से हिदायत दी, वे पूछ रहे थे।

ऐसे ही चलिए बहन ने कहा पर पिता जी को बेल्ट चाहिए थी, जूते मोजे, पतलून कमीज भी और बिला शक बटुआ और घड़ी भी और वे ड्राइवर का हाथ झटकते गए गाड़ी तक लड़खड़ाते चलते पर भाई का हाथ नहीं।

और फिर वे चले गए।

बहन की गोदी में सिर रखा और धेवते का हाथ पकड़ा और भाई से जो आगे बैठे थे कहा बेटा जल्दी यह मामला निपटा दिया जाए क्योंकि सारी फैमिली परेशान है रुकी है, उर्मी, यानी भाई की पत्नी, तुम, मोहन, उसकी पत्नी, यानी बहन, इसकी बहन यानी मैं, राम, अनु, यानी छोटे की पत्नी, छोटे, डाली, बेबी, रग्घु सब। सबको जैसे एक गिनती में याद करके अपनी थैली का एकबारगी चट्टे बट्टे बना देने की मंशा से। अपनी पत्नी का नाम उन्होंने नहीं लिया।

बस आँखें बंद कर लीं जैसे जानते थे कि अब उन्हें जहाँ ले जाना चाहिए ले जाया जाएगा सुथरेपन से और इज्जत से, उस पूरे औपचारिक सम्मान से जो एक ऊँचे पद के शक्तिमान अफसर का हक है।

इमरजेन्सी वार्ड में उनकी कोई जरूरत नहीं थी, न आई सी यू में जब वे पहुँचे और सारे डाक्टर बड़े और छोटे, जो बीच कामों को छोड़ कर पलट के दौड़े आए थे ठीक वापस पलट गए अपनी नर्सों की टोली और दवा दारू के तामझाम के साथ। और वे...

हाँ वे भी ठीक वापस पलट गए बेल्टयुक्त, टाईयुक्त, बटुवायुक्त, छड़ीयुक्त, सौ रुपिल्ले के बचे फुटकर जेब में भरे, जिनकी टनटनाहट किसी को सुनाई नहीं पड़ी, इतने वेग से सफाई से सब कुछ के हो जाने पर सब कुछ के होते जाने पर।

हमने माँ को घेर लिया जब निरे हाथ उन्हें उठा कर बगल के कमरे में ले गए जहाँ वे माँ के संग रहते थे जब भाई के पास होते। जिस कारण माँ उन्हें देख नहीं पाई और बस बुदबुदाती हममें से किसी को भी देख कर कि मैं आजाद हो गई, जिम्मेदारी से बरी जहाँ चाहूँ जाऊँ। बुदबुदाती रही, उसकी आँखों का रंग उसकी साड़ी से फीका।

हम सब वहीं थे, दौरे आदि पूरे करके और सब एक साथ क्योंकि एक एक को याद वे करके गए थे। बारी बारी से हम गए उस कमरे में जहाँ वे सो रहे थे सूट में, आँखें बंद और जिस्म का कोई हिस्सा, न जबड़ा, न पुतलियाँ इधर उधर बेढब बेढंगी लुढ़की झूलती बेल्ट ढीली कर दो भाई ने बहन से कहा पूजा के बीच जो वह कर रहे थे। उनकी बगल में बैठ जो लेटे थे। हम सबने उन्हें छू भी लिया, हल्के से, पाँव या माथा, क्या पता अपने खून से जुड़ के या किसी और जुड़ाव के कारण एक बदमिजाज बदजुबाँ आदमी से जो उसी पल में विजड़ित हो गया था न जाने कैसे स्नेहिल बन या क्या मालूम उसे पूरे अलग दूजे आदमी के जीवन को छुआ जो जा चुका था और पूरी तरह जा चुका था, कोई आभास पीछे न छोड़ कर यादों के सिवा जो भी बदलने वाली थी उस राख में जिसमें वह बदल जाएगा, सूर्यास्त के पहले बह जाएगा, उड़ जाएगा, गंगा में और हवा में और गया, एकदम गया, हमेशा के लिए गया। हाँ हो भी सकता है हमने उस आदमी को छुआ जो हमारे आपस के रिश्ते से अलग कोई था, हमसे मिलती पहचान से जुदा, जिसने कोशिश की, भोगा, भुगता, पाया, सूख गया। हमने जीवन के ओज को छुआ और अपने लिए उम्मीद करी उस हल्के स्पर्श में।

हम सबने सिवाय माँ के जिसने न देखा न छुआ क्योंकि वह नहीं जान पाई कि वे लौट आए हैं और उसे सूझा नहीं कि पूछे और सोचे कि कब कहाँ लौटेंगे जो अब तक नहीं आए?

उसने तब भी नहीं देखा जब हम सबको वहाँ से निकाल दिया गया उनके आखिरी रस्मी नहाने के लिए जो बड़ा बेटा कराएगा और बाद में हम मन ही मन उन्हें देखते रहे धीरे धीरे अपने सारे भौतिक वस्त्रों से एक एक करके मुक्त होते जाते जब हमने उनके दाँत और बटुआ और बेल्ट देखे जो मंदिर को या पवित्र नदी को भेंट हो जाएँगे।

वह तो जब पुरुषजन उन्हें कमरे से लेकर निकले अर्थी पर लिटा कर अब नए नवेले से चमकदार सफेद चादर में लिपटे कि माँ चेती और चीख पड़ी कि एक बार देख तो लेने दो। हम भी चेते और वह अकेला अस्त व्यस्त हड़बड़ खड़बड़ पल था उस दिन जो उन्होंने दिया, जब हम सब के सब, पूरा संयुक्त परिवार अचानक समझ गया कि माँ को तो पता ही नहीं था वे बगल में आ गए थे और हम सब के दिल का टुकड़ा हमारे मुँह को उछला और हम सब चीखे एक सुर में रुको रुकिए, कुछ हममें से अर्थी वालों को पीछे खींचते हुए और बाकी माँ को आगे ढकेलते हुए और उस सारे कोलाहल मे पुरोहित, औरतों के लिए सदैव अधार्मिक, गरजता हुआ कि नहीं पीछे नहीं मुड़ा जाएगा, उनकी शुद्धि हो चुकी है औरत की निगाह उन्हें अशुद्ध कर देगी। पर भीड़ ने हमेशा धर्म और नैतिकता की दुहाई को ललकारा है और भाई ने अर्थी नीचे की और उनके चेहरे से चादर धीरे से माँ के लिए हटाई और वे लकदक नए सफेद पजामा कुर्ता में दिखे जो उन्हें ले जाएगा लपटों पर सवार करके कहीं तो।

छोड़ कर पीछे एक हाँड़ी में मुट्ठी भर राख बस जो नहीं जान सकती कैसे जान सकती कि वह उतरेगी रेलगाड़ी से वाराणसी धाम पर और बंदूक की सलामी पाएगी उस आदमी के उपयुक्त जो वे कहते थे वे हैं और चुस्त अफसरी काफिले में जाएगी अर्पित होने हमेशा के लिए गंगा में अंतरध्यान हो जाने एक यात्रा में धरती से आग से, पानी से अनंत तक की।

बहन की आँख में आँसू आ गए जब उसने उनका पहना हुआ अंडरवेयर बाथरूम में टँगा देखा उस दिन का जब वे नहा कर बैठे थे धुले वाले को अपने थके हाथों में देर तक

पकड़े हुए। लावारिस पड़ा, किसी का नहीं। बेकार लगता है, वह बोली, किसी का नहीं और हम हँसे जब हमें याद हो आई एक और रात जब उन्होंने अपना अंडरवेयर गंदा कर लिया था और किसी को बंद दरवाजों के पीछे से खट खट खट खट करके नहीं निकाल पाए और खुद ही अपनी गंदगी से निपटना पड़ा। सुबह वे सोए मिले सारे कपड़े और गंदा अंडरवेयर एक ढेरी में फिंके और उनकी देह बिस्तर पर बिछी चद्दर में लिपटी। उनकी देह, उन झूलते गोलों को बाहर छोड़ती हुई, जो फूल गए थे प्रोस्टेट से। वे उठे थे रामन बादशाह के जैसे लिबास में चादर की चुन्नटें कमर पर और कंधे पर और वह हिस्सा उनकी बादशाहत की नाप का अलग झूलता, जिस पर हम हँसे और बेवकूफ खयाल पर और ज्यादा कि वहीं हमारी शुरुआत है।

हँसे हम सब, सिवाय माँ के जो बैठी रही उतनी ही बेकार जितना वह अंडरवेयर जिसने बहन को रुलाया था। भाई ने माँ से कहा प्राइवेट कंपनी वाले दामाद से पैसा माँगे और यह भी कि पिता से थोड़े से ब्लैंक चेक साइन करा लेने थे अब फौरन पैसा कहाँ से आएगा और काफी रुकना पड़ सकता है विधवा की पेन्शन का सिलसिला शुरू होने तक। मैंने मौका देख कर माँ को याद दिलाया कि उसकी दो रंगीन बनारसी जरी की साड़ियाँ जो मैंने पहले से कही थी मैं लूँगी उन्हें न भूले। उनकी चीजें जो काम की हैं काम में लाई जा सकती हैं मेरे पति ने नीति बताई और हम सब जो एक दूसरे से मिलना देखना बंद किए हुए थे मिल कर उदारता और अनुकंपा और आपसी सद्भाव से उनकी बढ़िया फोरेन कमीजें और घड़ी और आदि आपस में बाँटने लगे जो वैसे भी हमीं उनके लिए लाते रहे थे। सच्ची हम सब साथ साथ मेजबान बने और शोक करने को आए मेहमानों को मिल कर नमस्कार करते और माँ के पास ले जाते।

जो पता नहीं क्यों कुछ बोल नहीं रही थी सिवा इसके कि अब वह आजाद हैं कोई जिम्मेदारी नहीं बोझ नहीं। चैन से या शिकवे से, दुख से कि कड़वाहट से, शहादतपन से कि काइयाँपन से, कौन पूरी तरह भाँप सकेगा? हमने देखा उसे फूहड़पन से बैठे - क्योंकि तेरह दिन तक जब तक जाने वाले की आत्मा घर में ही विचरती है उसे अपना दुख अपने रोम रोम पर बिठाना था दाँत न माँज कर, नाखून न काट कर, बाल न बना के, न धो के, न नहा के, न सज के, बिस्तर पर न सोके, कुर्सी पर न बैठ के, न खा के उस कौर से आगे कि बस मरे नहीं, न हँस के, न बोल के, बस बन के वह अभागन

विधवा जो अपशगुन की तरह थी जिसका पति उससे पहले मर गया था इसलिए एक तरह के पवित्र पारंपरिक सोच के अनुसार उसने उन्हें मार दिया था अपनी लिप्सा और लोभ से, जीने के मोह से और अब बस प्रायश्चित करे, करती रहे, गुज मुज रंगहीन धोती में लिपटी, बाल बिखरे, नाखून पंजे शिकंजे से, बैठी हुई कमरे में जो कभी चुस्त और चमकदार था अब उसकी साया से मलिन, कलुषित सब कुछ हटाके सिवाय एक मुड़ी धुची चादर के जो फर्श पर पड़ी पुरानी दरी पर बिछी थी। दया से और संशय से हमने उसे देखा जो वहाँ कोने में बैठ गई थी और बैठी रही जैसे वहीं गड़ गई हो और कभी अब वहाँ से नहीं टलेगी।